नाले का तट

हरीचरन प्रकाश

नाले का तट

किर्र-किर्र घंटी बजी। आवाज की ओर, आराम से बैठे अजय शंकर राय उठे, की-होल से झाँका और दरवाजा खोल दिया। दरवाजे पर खड़ी औरत ने मुस्कान के लिए मुँह बनाया। दाँत पर से होंठ उतारते ही वह असफल हो गई। वह बुरी तरह थकी हुई थी और हल्के-हल्के हाँफ रही थी। अभी-अभी हाथ का बोझ उसने जमीन पर रखा था और

साँस की सलवटें ठीक होने से पहले ही दरवाजा खुल गया था। वह एक सेल्स वूमन थी।

वह दरवाजे से लगे हुए चबूतरे जैसे बरामदे में खड़ी थी और महज चार कदम की दूरी पर मई की धधकती धूप से बेरंगा आसमान था। वह इस धूप को सोखती हुई आई थी।

गर्मी से झुक आई आँखों को कोशिश करके तानते हुए उसने कहा, "क्या कहीं से एक गिलास पानी मिल जाएगा। मुझे आस-पास कोई नल नहीं मिला।"

अजय शंकर राय बिना कुछ कहे मुडे और अंदर से ठंडे पानी की बोतल और गिलास लेकर आए। वह औरत बिना किसी सलोनेपन के साँवली थी और बहुत ही सामान्य ढंग से अनाकर्षक थी। पानी पीते हुए उसने एक क्षण के लिए आँख बंद की और पानी की तरावट आँखों में सहेजी। जब उसने आँख खोली तो उसके सामने आधे दरवाजे में श्रीमती सुषमा राय खड़ी थीं। पानी पीकर बचे हुए पानी से उसने गिलास धोया और कहा, "थैक्यू सर, मैडम।"

अब वह तैयार थी और राय दंपत्ति भी।

"देखिए मेरे पास घरेलू जरूरत की चीजें हैं। बाजार से सस्ती हैं अच्छी भी।" कहते हुए उसने जमीन पर रखा कैनवस का होल्डाल जैसा महाझोला खोला।

"यह देखिए डायनिंग टेबल की मैट।"

"यह नहीं चाहिए।" सुषमा राय की नजर के आगे मैट्स फिर से उसी झोले में आहिस्ते से डूब गए।

"लेडीज की जरूरत की चीजें हैं।" उसने धीमे से झोले के एक कोने में रखी चीजों की ओर इशारा किया।

"अरे नहीं।" सुषमा राय जब कह चुकीं तब उनके पति को लगा कि 'लेना न देना पर देख लेना' के इस खेल को अब खत्म कर देना चाहिए। धूप की धमक उन तक पहुँच रही थी।

सुषमा राय जिस घर में पैदा हुईं उसमें ढेर सारी लड़कियाँ थीं और इसी कारण बहुत कम पैसा था। उस समय शहर की गलियों में बहुत से फेरीवाले आते थे। लुंगी-चादर और धोती बेचने वाले, कंघी और चोटी रिबन वाले, इतर फुलेल और शहद बेचने वाले। घर की लड़कियाँ इकट्ठा होकर फेरी वालों के सामान का जायजा लेतीं और शायद ही कभी कुछ खरीदतीं। पड़ोसियों ने परिवार का नाम धरा 'लेना न देना, देख तो लेना'।

समय बदला। एक के बाद एक कम होते हुए वह फेरीवाले केवल उन लोगों की याददाश्त में बचे जिन्हें याद करने का मजा लेना आता है। अब वह फिर से प्रकट हुए थे बीसवीं शती के अंतिम दशक में। उनके पास नए सामान थे। वह खुद भी सर से पाँव तक एक सामान थे। टाई लटकाए नए-नए लड़के हिंदुस्तान में घुस चुकी पूरी दुनिया की चीजें बेचने निकल पड़े। कुछेक लड़कियाँ भी उनसे पीछे न थीं। शुरू में यह सब एक साहसिक अभियान जैसा जान पड़ता था, रोमांचक, अनुकरणीय और चित्र-विचित्र दर्शनीय। लेकिन सब कुछ वैसा ही नहीं था। इस बाजार में कुछ ऐसे भी थे जो बड़ी मशक्कत का सौदा करते थे। वह लोग उन पुराने फेरीवालों की गुप्त संतानों जैसे थे, जैसे कि फर्श पर बैठी झोला झंकवाती वह औरत।

सेल्स वूमन होते हुए भी उसका चेहरा मजदूरिनों जैसा था जिस पर न आशा आती थी न निराशा। उसने लपेटी हुई तहों का एक आइटम उठाया और जतन से उसका बंधन खोला। हाथ में जूट के बने हुए चार झोले लेकर वह उठ खड़ी हुई।

"देखिए मैडम कितनी बढ़िया डिजाइन है। बाजार में इसे आप कहाँ ढूँढ़ने जाइएगा।"

अब तक यह स्पष्ट नहीं था कि यह पारी कौन खेलेगा इसलिए जब श्रीमती राय ने पति को यह कहते हुए सुना कि भई, झोले तो अच्छे हैं और फिर जूट के हैं तो उन्होंने अनमने आराम की साँस ली। अब वह इस झमेले से बाहर थीं, फिर भी पति के साथ थीं। दरअसल लेना न देना पर देख लेना का नाम थोड़ी ज्यादती के साथ रखा गया था। वास्तविकता थी 'लेना या न लेना, देख तो लेना'। इस वास्तविकता के तहत वह अधिकांश फेरीवालों को सहृदयतापूर्वक खाली हाथ विदा करते थे तो कुछ से कृपणतापूर्वक खरीदते भी थे। यह खरीदारी कभी युगल सहकार से होती थी तो कभी

एकदम स्वतंत्र और अकेली। इस अकेलेपन और स्वतंत्रता में न कोई सलाह होती थी और न आपत्ति।

राय साहब इन दिनों पालीथीन बैग्स के विरुद्ध चल रहे वैज्ञानिक चिंतन से बहुत प्रभावित थे। परंतु वह स्वभाव से समाजशोधक नहीं थे और किसी भी सामूहिक प्रयास से थोड़ा घबराते थे। इसलिए उन्होंने पालीथीन बैग्स के विरुद्ध एक अकेला और स्वतंत्र संकल्प लिया था। यथासंभव वह पालीबैग्स का प्रयोग नहीं करेंगे और अपना झोला साथ लेकर चलेंगे।

झोले कंधे से लटकाने वाले थे और उनमें एक उभयलिंगी स्वीकार्यता थी। पहले से ही यह जानते हुए कि वह इसमें जँचेंगे, अजय शंकर राय ने एक झोला अपने ऊपर लटका कर देखा। वह निश्चय ही अच्छे लग रहे थे।

कुछ मोल-तोल के बाद झोला बेचकर उस औरत ने बाहर कदम रखा। धूप उसके चारों तरफ एकदम से भड़क उठी और उसके इर्द-गिर्द सिकुड़ने लगी। अब वह अदृश्य ताप का एक देहाकार वलय थी। महाझोले के भार से तिरछी होती हुई वह धूप की धार में तिरती सी चली जा रही थी।

ओफ! रायसाहब मुड़े और इस मौसम के विरुद्ध घर का दरवाजा सावधानीपूर्वक बंद कर दिया।

उस औरत के लिए यह एक अच्छा दरवाजा था। कभी-कभार वह आगे भी आएगी। राय दंपत्ति मान्यतास्वरूप उसका नाम धूप वाली औरत रख देंगे। इस तरह मौसम के बदलाव के बावजूद उसकी पहचान बनी रहेगी।

अजय शंकर राय ने नौकरी अपर डिवीजन असिस्टेंट के पद से आरंभ की और यथा/तथाकथित अफसर होकर रिटायर हुए। पैंतीस बरस की लंबी नौकरी में उन्होंने दस बरस की छोटी अफसरी की। अगर महत्वाकांक्षा और मेहनत को ही संघर्ष का दर्जा दिया जा सके तो यह कहा जा सकता है कि उन्होंने संघर्ष भी किया। हालाँकि सीधी बात यह है कि उन्होंने अपनी मदद की तो भगवान ने भी उनकी मदद की।

नौकरी के आरंभ से ही वह ऊपरी आमदनी करते रहे परंतु इसमें उन्होंने शील और मर्यादा का सदैव ध्यान रखा। वह कुछेक कामों के लिए ही पैसा लेते थे। अधिकांश और बाकी सरकारी काम पूरी निष्ठा के साथ वह इसलिए करते थे कि सरकार उन्हें तनख्वाह देती थी। वह लुटेरे या लालची नहीं थे इसलिए भ्रष्टाचार की सामान्य निंदा स्वच्छ अंतःकरण से कर लेते थे। उन्होंने सिर्फ दो बार लंबे हाथ मारे, एक बार तब जब बंगलौर के इंजीनियरिंग कालेज में बेटे के लिए कैपीटेशन फीस देनी थी और दूसरी बार बेटी के ब्याह के सुअवसर पर। बेटा बंगलौर में ही सकुशल नौकरी से लगा है और बेटी कुशलतापूर्वक विदेश में गृहस्थी करती है। दोनों फोन से पापा मम्मी का हालचाल लेते रहते हैं। राय दंपत्ति अब ईश्वर से प्रार्थना नहीं करते हैं केवल कृतज्ञतापूर्वक उनका स्मरण करते हैं।

पति-पत्नी को गैस की साझी तकलीफ है जिससे वह पुरुषोचित और स्त्रियोचित तरीके से निबटते हैं। इसके अलावा स्वतंत्र रूप से श्रीमती राय को थोड़ी गठिया है और श्री राय को सुरक्षित सीमा के अंदर रहने वाला रक्तचाप। उनके डॉक्टर उनके पारिवारिक मित्र हैं जिनकी सावधान सलाह के तहत दोनों जने सबेरे-शाम हवाखोरी के लिए जाते हैं।

उस दिन दोनों सबेरे की हवाखोरी से कुछ देर हुए लौटे थे। 26 जनवरी के कारण शहर में ट्रैफिक के कुछ प्रतिबंध लगे थे जिससे उनके टहलने के रास्ते पर टैंपो ही टैंपो दौड़ रहे थे। हवा में धुआँ उसी तरह से छूट रहा था जैसे कोई नाला नदी में मुक्त होता है। आज धूप भी नहीं निकली थी। सूरज बादलों के पीछे बस उग कर रह गया था। जाड़ा गीला-गीला लग रहा था। गणतंत्र दिवस की अदायगी देखने के लिए रायसाहब ने टी.वी. चलाई। कमेंटेटर अपनी आवाज में उसी तरह उत्साह भर रहा था जैसे कोई बहुत गहरे कुएँ से पानी भर रहा हो, कभी तेज और कभी धीमे हाथ। असल में वह कुछ खिन्न था। उसके पास चुनी हुई धूप के कुछ बेजोड़ वाक्य तैयार थे लेकिन बदली ने उन पर पानी फेर दिया था।

राय साहब ने चैनल बदला। वह किसी क्रिकेट मैच की नावक्त खोज में थे। व्यर्थ में चैनल बदलते-बदलते वह उस मुकाम पर पहुँचे जहाँ देशभक्तिपूर्ण श्वेत-श्याम गाने बज रहे थे।

हम लाए हैं तूफान से कश्ती निकाल के

इस देश को रखना मेरे बच्चों सँभाल के

अजय शंकर राय का हृदय बजने लगा। वह गाने उन्हें इतना ऊँचा उठा देते थे कि सुध-बुध खोकर वह सर्वप्रथम एक भारतीय हो जाते थे। एक बिगड़ी हुई औलाद की आती-जाती खबर जैसे बाप की आँखों में भाप पैदा कर देती है उसी तरह से वह देश का ख्याल कर भावुक हो उठे। वह कुछ देर इसी अवस्था में रहे कि रंगीन गाने बजने लगे। उन्हें इनकी धुन पसंद नहीं थी। वह टी.वी. चलता छोड़कर बाहर आए, थोड़ी धूप देखने। धूप वहाँ थी नहीं, कहीं भी नहीं थी। तभी दरवाजे के आगे टहलता हुआ घुमंतू छवियों वाला वह बच्चा दिखा।

नौ-दस बरस का लड़का और घुटनों तक गिर जाने वाली एक बड़ी-सी कमीज। पूरे तन पर सिर्फ कमीज दिख रही थी। राय साहब को देखते ही उसने कहा, "कुछ दे दीजिए। भूख लगी है।"

इस वाक्य से पता नहीं लगता था कि वह खाना माँग रहा है या खाने के लिए पैसे। अचानक दोनों ही काम उसके छोटे से हाथ के लिए बहुत बड़े जान पड़ते थे। अजय शंकर राय इस पहली नजर की भूख से इतने भौंचक्के हो गए कि उनके मुँह से निकला "जाओ भागो यहाँ से।"

लगता था लड़के ने भी चकित होना जाना ही नहीं। पीछे कालर की तरफ हाथ डालकर उसने अगरबत्ती का एक पैकेट खींचा और बोला, "इसे खरीद लीजिए।"

"अरे**!**"

लड़का चुपचाप खड़ा था। उसका रंग साफ और चेहरा गोल था, किसी खोए हुए बच्चे की तरह। उसके शब्द याचक थे लेकिन सुर और भाव में कोई दैन्य नहीं था।

भीख देना कब का त्याग चुके राय साहब लड़के की इस अचानक चाल से क्षुब्ध हुए। उन्होंने पूछा, "अगरबत्ती? कैसी अगरबत्ती?"

"पूजा वाली नहीं। मच्छर वाली। ले के तो देखिए, बिजली वाली से बढ़िया है।"

लड़के की साफ और सीधी आँखों में इतनी मोहक बेबाकी थी कि कोई भी असावधान या निठल्ला आदमी स्नेहिल हो सकता था। राय साहब न असावधान थे और न निठल्ले किंतु वह मच्छरों के अन्यतम शत्रु थे। शिवशक्ति छाप हर्बल अगरबत्ती को उन्होंने उलट-पुलटकर देखा, बाएँ हाथ की हथेली को पैकेट से तीन-चार बार पटपटाया फिर सतर्क होकर पूछा, "कितने की?"

लड़के ने दाम बताया और यह भी बताया फुटकर पैसा नहीं है।

"अच्छा" कहते हुए राय साहब ने ठीक-ठीक दाम चुकाया। लड़के को जैसे इसी का इंतजार था। वह फुर्ती से लगभग उछलता हुआ बाहर की ओर भागा जैसे कुछ लेने के बजाय उसने कुछ मनभावन खरीदा हो। दौड़ते समय उसने राय साहब की ओर एक बार मुड़कर देखा और बच्चों की तरह हँसा। न चाहते हुए भी राय साहब के माथे पर बल पड़ गए। उन्होंने पैकेट की ओर ध्यान से देखा। कुछ भी गलत नहीं लगता था।

कमरे में लौटकर वह व्यग्रतापूर्वक नाश्ते का इंतजार करने लगे। वह बस आता ही होगा स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यप्रद। मोटे तौर पर उन्होंने स्वादिष्ट को ही स्वास्थ्यप्रद पाया है क्योंकि पत्नी के हाथ में स्वास्थयप्रद को स्वादिष्ट बनाने की कला है। वायुविकार की सुदीर्घ जीवन यात्रा में तरह-तरह के याचित और अयाचित सुझाव मिलते हैं। एक बार सलाह मिली कि कच्चा चना खाओ। राय साहब ने सोचा कि दवा की तरह खाएँगे। लेकिन नींबू, अदरख, प्याज और चाट मसाला के योग से श्रीमती राय ने उसे एक व्यंजन बना दिया।

अधीर होकर उन्होंने आवाज दी, "क्या कर रही हो, यार?"

"देख रहे हो।" किचन से आवाज आई।

सुषमा राय ट्रे में चाय और नाश्ता लेकर आई।

"26 जनवरी लगाओ।" उन्होंने पति से कहा। रिमोट राय साहब के पास रखा था।

"क्या देखोगी? परेड ही परेड आ रही है।"

"अच्छा रिमोट हमें दो।"

दो-तीन मिनट परेड ही परेड देखने के बाद श्रीमती राय ने चैनल बदला तो एक सुपरहिट जै हिंदी वंदेमातरमी फिल्म के प्रायोजक ही प्रायोजक आ रहे थे। उन्होंने आवाज म्यूट कर दी। अधिकतर विज्ञापन भी शत्रुहंता कोटि के थे। कोई घर की फर्श बराबर पृथ्वी से काकरोच का उच्छेद कर रहा था तो कोई अनचाहे घने बालों को साफ कर रहा था। एक कीटनाशक तो अदृश्य कीटों का सफाया कर रहा था। तभी एक मच्छर पीड़क इलेक्ट्रिीकल मैट प्रकट हुई।

"अरे लो, एक बात तो बताना ही भूल गया।" राय साहब ने कहा।

श्रीमती राय ने चेहरा थोड़ा-सा उचकाया तो राय साहब ने हर्बल अगरबत्ती और लड़के के बारे में बताया। श्रीमती राय ने पड़ताली हावभाव के साथ अगरबत्ती को पैकेट देखा, फिर बोलीं, "टी.वी. पर तो अभी तक दिखा नहीं। अखबार में जरूर निकल रहा है।"

"है ही कितने का? ट्राई किए लेते हैं। बस नकल न हो।"

"जिसके असल का कोई पता नहीं। उसकी नकल क्या होगी।" कहते हुए श्रीमती राय ने आवाज का बटन दबाया। फिल्म शुरू हो गई थी। आदमी और हथियार उछल कर नष्ट हो रहे थे। तकनीकी दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट फिल्म थी।

धूप वाली जिस दिन दुबारा आई वह शनिवार का दिन था। संयोगवश दरवाजा महरिन ने खोला। किसी संयोगवश ही महरिन का नाम सुषमा था, सुषमा प्रजापति। राय साहब उसकी उपस्थिति में कभी पत्नी का नाम नहीं लेते थे। सुषमा राय उसकी मौजूदगी में अपना नाम छिपा लेती थीं। दरवाजा खोलते ही उसके चेहरे पर एक सलवट पैदा हुई और अंदर आकर बताया कि कुछ बेचने वाली आई है। उसे देखते ही राय दंपत्ति ने मन बना लिया कि आज इससे कुछ नहीं खरीदना है। वह किसी की आदत नहीं बिगाड़ना चाहते थे। आइंदा खरीदेंगे, आज नहीं, के निश्चय के साथ मंद-मंद मुस्कुराते हुए उन्होंने चीजों को देखा और मना कर दिया। वह सामान बटोर

कर चलने को हुई तो सुषमा प्रजापति ने अंदर से आकर उसे रोका, "तुम तो पहले बिस्कुट दालमोठ बेचती थीं, अब क्या हो गया?"

"तुम अंदर जाओ।" राय साहब ने हल्का-सा झिड़का।

सुषमा प्रजापति को झिड़की पसंद नहीं थी। राय दंपत्ति के अंदर आते ही उसने प्रतिवाद किया, "हम सही कह रहे हैं। क्या हम पहचानते नहीं? हमारी कालोनी में एक बार आई थी। हम इस तरह के घर-दुअरिया करने वालों से कुछ नहीं लेते। बाजार काहे के लिए बना है।"

वह एक साँस में बात करने वाली बड़बड़ही औरत थी।

"ठीक है, ठीक है।" श्रीमती राय ने उसे वहीं रोकने का प्रयास किया। लेकिन वह उन लोगों में से थी जो किसी भी बातचीत में आखिरी वाक्य अपना ही चाहते हैं।

"दुआरे-दुआरे औरत सामान लादे फिरे, कोई तरीका है। इससे अच्छा तो हमारा काम है। थोड़ा पढ़ाई-लिखाई और कपड़ा लत्ता में कमी कर दो, तो हमारे जैसे ही दिखेगी।"

"अरे, तुम उससे अच्छी लगती हो भाई।" श्रीमती राय ने उसे संतुष्ट किया।

"आप भी आंटी जी।" इस बार वह झेंपकर मुस्कुराई और चुप हो गई।

असल में सुषमा प्रजापति बड़ी सजग औरत थीं। जब पहली बार श्रीमती राय ने उसे महरिन कहकर पुकारा तो उसने तुरंत प्रतिवाद किया।

"आंटी जी, नाम लेकर पुकारिए। महरिन-कहारिन न कहिए।"

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"सुषमा।"

नाम के इस दुर्योग से श्रीमती राय इतनी स्तब्ध हुईं कि यह प्रतिवाद करना भूल गईं कि यह आंटी जी कहने का क्या तुक है। अब वह आराम से अंकल जी आंटी जी कहती

थी। इस समय वह पोंछा लगा रही थी। फर्श रगड़ते हुए हाथों के साथ हिलती हुई सरल छातियों में कोई मलिन आकर्षण नहीं था।

शनिवार की शाम राय दंपत्ति बाजार की सैर करते थे। खरीदरारी के खास मकसद से नहीं, वरन यूँ ही। लेकिन कुछ न कुछ खरीददारी हो ही जाती थी। वह बाजार ही ऐसा था, जहाँ आकर याद आ जाता कि घर में क्या नहीं है। यह नगर का मशहूर बाजार था जिसे बनवाया तो नवाब ने था पर बसाया अँग्रेज ने था। सड़कें गाड़ियों से अटी पड़ीं थीं। दुकानों में रोशनी उफन रही थी, फुटपाथ पर जनसंख्या विस्फोट-सा हो रहा था। किसी समय यहाँ लोग हाथ में हाथ डालकर चलते थे। मगर अब यह मुमकिन नहीं था। कभी भी एक जोड़े के बीच कोई तीसरा लपक कर गुजर जाता था। यहाँ बहुत अच्छी आँखों की जरूरत थी।

स्थिर रोशनियों के तले आदमी और सवारी आ-जा रहे थे। कुछ बच्चे उनके पीछे पड़े थे। कोई कार का शीशा साफ करके हाथ फैला रहा था तो कोई तेल का कटोरा लेकर शनि का दान माँग रहा था। कोई चिल्ला-चिलाकर सांध्यकालीन समाचार-पत्रों की सनसनीखेज हेडलाइन्स बेच रहा था। दो-एक बच्चे प्रसाद चढ़ाकर मुड़ते हुए भक्तों की परिक्रमा-सी कर रहे थे। यह सब लगन के पक्के लड़के थे। लेकिन राय साहब को इनसे उसी तरह अव्यवहार करना आता था जैसे कि वह भिखारियों से कर लेते थे। यह उन्होंने एक दिन में नहीं सीखा। उन्हें समय ने सिखाया।

विद्यार्थी काल में किसी भिखारी को पैसा या अधन्ना देकर उन्होंने बड़ी तृप्ति का अनुभव किया। जब से उन्होंने जेब में पर्स रखना शुरू किया तब से भीख देना असहज होने लगा। फर्क है जेब से पैसा निकालकर किसी हथेली की ओर फेंकना और जेब से पर्स निकालना, खोलना, सिक्का चुनना और फेंकना। जब उन्होंने सवारी चढ़नी शुरू की तब और बाधा आई। कौन इस काम के लिए सवारी रोककर नुमाइश खड़ी कर सकता है। अब वह इस मुद्दे पर विचार-संपन्न भी हो चुके थे। भीख लेना और देना एक ही खोटे सिक्के के दो पहलू हैं, ऐसा मानते हुए वे सर्वोच्च कोटि की उपेक्षा बरतने में माहिर हो चुके थे।

तब भी दूसरे इस मुसीबत से कैसे निबटते हैं, यह देखना ही पड़ता था। श्रीमती राय के ठीक सामने बेतरह चिपकी जींस में एक सुहागिन चूतर ताने चली जा रही थी। उसकी टाँग तो सीधी चल रही थी परंतु गरूगंभीर नितंब किसी अलग अभ्यास के तहत ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ, हिल-मिलकर लंगड़ा रहे थे। उसका पति उसी के बराबर लंबा था। इसलिए वह कुछ आगे-पीछे होकर चलने की कोशिश कर रहा था। जब दोनों फुटपाथ की एक मैगजीन की दुकान पर रुके तो पायजामा और पेटीकोट का नाड़ा बेचने वाला लड़का उनकी ओर लपका। उसके पहले प्रस्ताव को तनी हुई मुस्कुराहट के साथ नकारा गया। उसके बाद लड़के ने दबादब अपने दाम इतने कम करने शुरू किए कि लगा कि वह उनका मखौल उड़ा रहा हो। तनी हुई मुस्कुराहट अब तनतनाने लगी थी। पत्नी की परेशानी देखकर पति उसके और नाड़ा वाले के बीच खड़ा हो गया। दोनों हाथ कमर पर, पीठ विक्रयार्थी की ओर। इससे ज्यादा संभव नहीं था। लड़का धीमे से अलग हुआ जैसे कोई चीज सरकी हो। राय साहब दिमाग पर जोर लगाकर संदेहालु हुए कि हो न हो यह वही अगरबत्ती वाला लड़का है। उन्होंने निगाहें सीधी और ऊँची कीं, लड़के के कद से बहुत ऊपर। पारदर्शी द्वार पार गहरी गहमागहमी थी। संतोष की अनुभूति के साथ राय दंपत्ति ने दुकान में कदम रखा।

यह दुकान कुछ ही महीने पहले एक पुराने सिनेमाहाल को बंद कर के खुली थी। पहले यह हाल केवल अँग्रेजी फिल्में दिखाता था, बाद में हिंदी का दखल हुआ। मात्र तीन सौ सीटों का यह हाल बंद होने के समय छोटे बजट की सार्थक फिल्में दिखता था। अजय शंकर राय में इस हाल के प्रति कुछ कलात्मक किस्म का आकर्षण था। पाँवदान जैसी बिछी सीढ़ियाँ चढ़कर जब वह हाल में पहुँचते तो लगता था कि अब पर्दा उठेगा और नाटक शुरू होगा। इस हाल में वास्तव में नाटक का गाढ़ा लाल पर्दा टँगा था जिसके खिंचने पर सिनेमा का स्क्रीन प्रकट होता था। इसी समय एक पुराने धुन की घंटी बजती थी।

स्त्री को संपूर्ण बनाने वाली इस दुकान का नाम रोमन लिपि में मानुषी था। हाल में प्लाईवुड की मदद से कुछ परस्परजनक गलियाँ और कोने पैदा किए गए थे। अगर एक सिरे पर साड़ी वीथिका है तो दूसरे पर सलवार। अँगिया और जाँघिया प्रकोष्ठ आमने-सामने थे। अँगिया प्रकोष्ठ की पुतली अँगिया पहने थी और जाँघिया प्रकोष्ठ

की जाँघिया। कपड़ों की इस कारगुजारी पर उचटती निगाह डालते हुए राय दंपत्ति उस काउंटर पर पहुँचे जहाँ अंगराग बिकते थे। श्रीमती राय धैर्यपूर्वक अन्य खरीददारों का मुआयना करती रहीं और जब वह इस काउंटर पर सबसे पुरानी हो गई तब उन्होंने प्यूमिक स्टोन खरीदा। इस बीच कुछ देर तक राय साहब ने दुकान की जगह सिनेमाहाल को पुनर्स्थापित करने की कोशिश की। इस कोशिश में वह बुरी तरह असफल हुए क्योंकि नया सामान अपनी जगह बना चुका था। राय साहब के दिमाग का वह कोना जहाँ सिनेमाहाल बसा था तेजी से उजड़ने लगा। अगर इस दुकान में आते रहे तो एक दिन भूल जाएँगे कि सिनेमाहाल कैसा था। स्मृति का सफल उद्दीपन खंडहरों में ही संभव है।

प्यूमिक स्टोन को पालीथीन की झोली में डालती हुई काउंटर गर्ल से श्रीमती राय ने कहा, "नहीं, पालीथीन नहीं।"

काउंटर गर्ल ने परेशानी का अभिनय करते हुए कहा, "सारी मैम, कागज के बैग्स नहीं हैं।"

"कोई बात नहीं मैं इसे पर्स में ऐसे ही रख लूँगी।"

श्रीमती राय का पर्स असली चमड़े का था और उन्होंने अपने पति के लिए इस समय एक प्वाइंट स्कोर किया था।

उस दिन जब रात साढ़े नौ बजे बिजली गई तब राय दंपत्ति बेड के सिरहाने पीठ टिकाकर टी.वी. देख रहे थे। बिजली भक्क से नहीं गई। एकदम घर की रोशनियाँ हल्की हुईं जैसे आवाज धीमी होती है और फुसफुसाता हुआ टी.वी. बुझ गया।

उसी समय उन्हें मच्छर की पहली भनभनाहट सुनाई दी। एक अकेला मच्छर उन्हें बेचैन करने में समर्थ था। कभी-कभी वह सोचते कि आखिर इस दुनिया में उनकी भूमिका क्या है। उन्हें मच्छरों के बदले हुए रंग-रूप से परेशनी होती थी। यह उनके छुटपन जैसे मच्छर नहीं थे छोटे-छोटे भूरे सफेद से, मौसम के साथ आने-जाने वाले। कहाँ से इतने बड़े और काले-काले बारहमासी पैदा हो गए। इनके बैठते ही चमड़ी जलने लगती थी। कभी-कभी तो लगता था कि इन्हें आदमी पर बैठना भी उतना ही

अच्छा लगता है। जितना कि काटना। राय साहब ने जलन वाली जगह पर अंदाज से हाथ मारा।

"मिला।" श्रीमती राय ने पूछा।

"नहीं।"

"मच्छर वाली अगरबत्ती कहाँ रखी है, चलूँ जलाऊँ।"

"पहले टार्च ढूँढ़ें तब अगरबत्ती। मच्छरदानी तो जैसे लोप हो ही गई दुनिया से।"

"इलेक्ट्रिक मैट है न। अब उठोगे या मैं उठूँ। घुटना पता नहीं क्यों सुन्न पड़ गया है।"

"तुम बैठी रहो।" कहते हुए राय साहब उठे और टटोलते हुए खिड़की खोली। बाहर निपट अँधेरा था। स्ट्रीट लाइट नहीं जल रही थी। कोई लैंप ढिबरी भी नहीं। मामला ज्यादा गड़बड़ है, उन्होंने सोचा। उन्होंने दरवाजा खोला महज अँधेरे को देखने के लिए। इतना अछोर अँधेरा उन्होंने पहले नहीं देखा था। सब कुछ उसी में डूबा हुआ था। सड़क, पेड़ और मकान, उनके साए और उनकी आवाजें भी। कुछ भी न देख पाने को देखना अचानक बहुत अच्छा लगने लगा। खुली आँखों को कब इतना आराम मिला था। उन्हें अपने अंदर कुछ उठता हुआ-सा महसूस हुआ। उनका मन हुआ कि इस अँधेरे पर चलें। तभी भीतर से आहट आई।

"यहाँ क्यों खड़े हो?" श्रीमती राय आकर बगल में खड़ी हो गई थीं।

"ऐसे ही।" फिर जैसे मन की कोई बात बोलते हुए बोले, "अद्‌भुत अँधेरा है।"

"विकट अंधकार।" हिंदी भाषा की किसी पंक्ति जैसा श्रीमती राय के मुख से निकला। फिर आगे बढ़कर उन्होंने चारों तरफ देखा और बोलीं, "वह देखो रोशनी।"

दूर किन्हीं खिड़कियों में रोशनी झलक रही थी।

"यह तो मैंने देखा ही नहीं। इन्वर्टर होगा।"

"मैं कब से कह रही हूँ, हम लोग भी लगवा लें। पता नहीं क्यों ढील दिए हो?"

"अब पक्का।" कहते हुए रायसाहब ने दरवाजा बंद किया।

अगरबत्ती की नागवार गंध नाक में जाते ही एक क्षण के लिए श्रीमती राय का मन हुआ कि उस तीखी साँस को उगल फेंकें। मजबूरी में वह होंठ ही होंठ थुकथुकाई और फिर उन्होंने अपने को शिवशक्ति हर्बल अगरबत्ती की कसैली रक्षा व्यवस्था को सौंप दिया। मच्छर उनके पास भटक नहीं पा रहे थे।

शिवशक्ति छाप हर्बल अगरबत्ती प्रभावशाली अगरबत्ती है। हर्बल एक वैकल्पिक विचार है जैसे बचपन एक वैकल्पिक अवस्था है, सेवानिवृत्ति के बाद खूब-खूब याद आने वाली। वह लड़का ठीक निकला, नींद में लय में जाने से पहले नीम की सुलगती सूखी पत्तियों का धुआँ राय साहब को याद आया।

सबेरे राय साहब की तबियत थोड़ी भारी थी। पानी कुछ ज्यादा ही ठंडा लग रहा था। वह निश्चित नहीं थे कि हल्की-फुल्की हरारत रहेगी या पूरे पैमाने का बुखार। दिन चढ़ने तक यह स्पष्ट हो गया कि यह पूरी तरह से पका हुआ बुखार ही है। वह क्रोसिन लेने या न लेने के बारे में सोचने लगे। बिना दवा खाए ठीक होने की इच्छा करना कोई सनक है या स्वाभाविकता। उन्हें वह बहुत पुराने दिन याद आए जब उबला पानी पिला-पिलाकर उनकी तबियत ठीक कर दी जाती थी। लेकिन तीसरे पहर तक इतनी तेज बुखार बढ़ा कि क्रोसिन लेनी ही पड़ी। अब वह सोचने लगे एंटी बायोटिक से बचें।

रात तक उनकी देह बुखार से भभक उठी थी। पूरा शरीर दम लगा कर दर्द कर रहा था। राय साहब आह-उह करके दर्द को मसलने लगे। श्रीमती राय को देखते ही उन्होंने दर्द की हुंकार भरी। कुछ बीमार ऐसे होते हैं जिन्हें तीमारदार के रूप में एक जोड़ीदार चाहिए ही चाहिए। राय साहब ऐसे ही बीमारों में से थे जो अकेले या चुपचाप बीमारी बर्दाश्त नहीं कर पाते थे।

"क्या सिर दर्द कर रहा है?" श्रीमती राय ने पूछा।

"अरे रोआँ-रोआँ दर्द कर रहा है। तुम्हें सिर-पैर की पड़ी है।"

"एक पेनकिलर ले लो। दवा से क्या भागना? मैं रम्मन को अभी बुलाती हूँ। उनका कहा तो मानोगे।"

"फोन लाओ। मुझेसे बात करा दो" राय साहब ने उत्तर दिया।

रम्मन दूर के रिश्ते से श्रीमती राय के भतीजे लगते थे और डॉक्टर थे। मियाँ-बीवी दोनों डॉक्टर थे। किसी समय राय साहब ने पोस्टिंग के सिलसिले में उनकी मदद की थी और तब से दोनों के बीच आपसी समझदारी से जुड़ी एक कारआमद रिश्तेदारी की शुरुआत हुई थी। यह रिश्ता इतनी बुद्धिमानी से संचालित होता था कि इसमें किसी चालाकी या ज्यादती की गुंजाइश नहीं थी। डॉक्टर दंपत्ति जब-तब राय दंपत्ति की छोटी मोटी डॉक्टरी सेवा कर देते थे। राय साहब उन्हें जब-तब डिनर पर बुलाते थे और समय तथा मूड होने पर बच्चों की स्कूली हिंदी/अँग्रेजी की सुश्रुशा कर देते थे। एक बार डॉक्टर दंपत्ति को खजुराहो जाना हुआ तो वह बच्चे राय साहब के पास छोड़ गए। तब भी समझदारी का आलम यह था कि राय साहब ने डॉक्टर रम्मन को रात में नहीं बुलाया केवल इतना कहा कि सबेरे घर से निकलते हुए देख लें और पेन किलर खाने की सलाह प्राप्त कर ली।

दवा खाने के बाद उन्होंने दर्द की ओर ध्यान दिया। अभी दवा का असर होने में देर थी अतः उन्होंने फिर से आह-उह शुरू की। श्रीमती राय ने पूछा, "अब क्या है?"

"दर्द जा नहीं रहा है।" कहते हुए राय साहब ने दाएँ से बायाँ हाथ दबाना शुरू किया।

श्रीमती राय समझ गईं। उन्हें किसी का जिस्म दबना-दबवाना कभी अच्छा नहीं लगा। उनका मानना था कि या तो चुपचाप दर्द सहो या दवा खाओ। राय साहब को लगता था कि अन्य बातों के अलावा स्त्री का पत्नीत्व इसमें भी सार्थक होता है कि वह पति की देह कारण-अकारण दबाएँ। फिर भी इस बारे में उन्होंने पत्नी की अनिच्छा का सदैव आदर किया। लेकिन इस समय वह इतने जरूरतमंद थे कि बाएँ हाथ से दायाँ हाथ दबाते हुए उन्होंने पत्नी की ओर बेहाल निगाहों से देखा। राय साहब को अपनी देह पर, पत्नी पर हल्का सा गुस्सा आ रहा था। भुनभुनाते इशारे के साथ पट लेटते हुए बोले, "यहाँ मुक्की लगा दो।"

"अच्छा।" कहते हुए चूड़ियों की खनन-खनन के साथ श्रीमती राय ने राय साहब को हल्की-हल्की मुक्की से खूँदना शुरू किया। राय साहब को राहत महसूस हुई जिसके वशीभूत हो उन्होंने देह को ऐसा ताना मानो दर्द की एक लहर पर सफल संतरण कर हरे हों और भड़ाम से दगे।

लगातार मुक्की लगाने से थकी हुई श्रमती राय प्रतीक्षा कर रही थीं कि कब अब बस का इशारा मिले। लेकिन उधर तो एक नशे जैसी चुप्पी थी अतः इसे ही पर्याप्त संकेत मानते हुए उन्होंने आखिरी मुक्की हनी और उठकर बगल में बिछी चारपाई पर लेट गईं।

डॉ. रम्मन दफ्तर जाते समय राय साहब के पास आए। वह नगर निगम में स्वास्थ्य अधिकारी थे। डॉक्टर ने कुशल क्षेम की बात करते हुए राय साहब की तकलीफ सुनी और उसी अंदाज में चार दवाएँ लिख दीं।

राय साहब ने देखा और पूछा, "एंटी बायोटिक?"

"हाँ।" डॉ. रम्मन को मरीजों का बहस करना अखरता था। पढ़े-खिले मरीजों की तुलना में उन्हें अनपढ़ मरीज ज्यादा समझदार लगते थे।

"जरूरी है?" रायसाहब ने पूछा।

"हाँ।"

"बचपन में तो मैं उबला पानी पीकर अच्छा हो जाता था।"

"बचपन तो बहुत पहले की बात होगी।"

बिल्कुल ठीक, राय साहब ने सोचा। बचपन के बाद आयु की अन्य अवस्थाएँ आईं, मन उनका भोग क्यों नहीं लगा पा रहा है? इसके पहले कि राय साहब कुछ और पूछें, डॉ. रम्मन ने यह सूचित करते हुए कि आज नगर निगम समय से पहुँचना है, कहा "प्रदूषण वालों के मारे नाक में दम है। यह नया रोग पैदा हुआ है। बिना काम के नाम पैदा करना कोई इनसे सीखे।"

"लेकिन है तो ठीक मुद्दा। कितनी गंदगी है, फिर पालीथीन। शहर की सारी सीवर लाइन चोक पड़ी है। मेरा वश चले तो पालीथीन पर बैन लगा दूँ।" राय साहब अपने प्रिय सामाजिक विषय पर बोलने लगे।

डॉ. रम्मन ने उन्हें बीच में ही काटा, "आप कहाँ पालीथीन की बात ले बैठे। इस समय नासिरी नाले का मामला गर्म है।"

"क्या हुआ नासिरी नाले में?"

"नासिरी नाला साफ करना है। उसके किनारे की मलिन बस्ती साफ करनी है। एक एन.जी.ओ., एक सरकार और एक हाईकोर्ट सब मिलकर उसे मथ रहे हैं। उस नाले में अमृत बहाना है। अभी तो अंतरिम आदेश हुआ है आगे देखिए क्या होता है।" सदैव संतप्त सरकारी अधिकारी जैसा अभिनय करते हुए डॉ. रम्मन बोले।

"अरे हाँ। अखबार में तो खूब निकल रहा है। शहर के स्वास्थ्य के लिए खतरा है यह नाला। क्यों?"

"जी हाँ। प्रदूषकों का प्रदूषक। अब चलता हूँ जैसा हाल होगा बताइएगा।"

राय साहब के अगले कुछ दिन बड़ी तकलीफ में बीते। दवाओं ने शरीर की भौतिक अनुभूति बदल दी थी। उन्हें लगता कि उनकी जगह एक मानवाकार केंचुआ बिस्तर पर लेटा है। वह हथेलियाँ सूँघते और उबकाते। कभी उन्होंने सोचा था कि रिटायरमेंट के बाद अगर वह बीमार पड़े तो देसी दवाओं को अपनाएँगे। यह उनकी सामाजिक आत्मा का एकाकी विचार था, पिल्स पापिंग सोसाइटी के विरुद्ध। जैसे जुकाम में जोशांदा। परंतु उनकी देह ने इस विचार का कभी साथ नहीं दिया। उन्होंने बीमारी से निजात देने वाली अँग्रेजी दवाओं को अनिच्छा से देखा, खाया और नासिरी नाले को कोसा। निश्चय ही प्रदूषण की वजह से देह और जड़ी-बूटी की ऐतिहासिक संगति नहीं हो पा रही है।

ठीक होते ही वह रोज की तरह तैयार हुए। वह अभी भी सबेरे पैंट-कमीज में सज कर बैठ जाते हैं जैसे दफ्तर जाना हो, और रात में ही कुर्ता पायजामा धारण करते हैं।

तैयार होकर जब वह बाहर निकले तो महरिन दिखी। उसने कहा, "अंकल जी, ठीक हो गए।"

"हाँ।" कहते हुए राय साहब ड्राइंगरूम में आकर बैठ गए।

राय साहब गुस्ले सेहत की स्वच्छ थकान में निमग्न होना ही चाहते थे कि सुषमा प्रजापति ने ड्राइंगरूम में दाखिल होकर पूछा, "क्या हम लोग बेदखल कर दिए जाएँगे?"

"कहाँ से?" राय साहब ने बेमन से पूछा।

"घर से, बस्ती से।"

उसने राय साहब की ढपती हुई पलकों को संबोधित किया।

"तुम रहती कहाँ हो?" राय साहब ने मुश्किल से पूछा।

"नासिरी नाले में।" उसने ऐसे कहा जैसे कह रही हो रकाबगंज में, फतेहगंज में।

"तुम वहाँ रहती हो?"

"बहुत लोग रहते हैं। पूरी बस्ती है नाले के किनारे। सुन रहे हैं कि बस्ती उजाड़ने का प्लान बना है।"

"हूँ, पता नहीं।" राय साहब ने ईमानदारी से कहा क्योंकि इस तरह के प्लान बना-बिगड़ा ही करते थे। डॉ. रम्मन से हुई थोड़ी सी बातचीत के आधार पर वह कोई ठीक जवाब देने की स्थिति में नहीं थे। उन्होंने आँखे मूँद ली। सुषमा प्रजापति का साया चुपचाप कमरे से बाहर चला गया।

शाम को राय साहब ने पत्नी से पूछा, "यह जो महरिन है। इसकी तंदुरुस्ती कैसी है?"

लफ्ज तंदुरुस्ती में इतनी शारीरिकता है कि श्रीमती राय प्रश्न का सही आशय न समझ पाई। राय साहब ने स्पष्ट किया, "मतलब, तबीयत तो ठीक रहती है इसकी।"

"तबीयत में क्या हुआ है। बढ़िया काम करती है और बिना नागा आती है। ईमानदारी ऊपर से। और क्या चाहिए।"

"ठीक कहती हो। बस ऐसे ही मेरे दिमाग में आया कि नासिरी नाले के किनारे रहती है। बीमारी की जड़ के पास।"

"अरे आप भी। इम्युनिटी भी कोई चीज होती है, आप ही कहते रहे हैं। जो जहाँ रहता है वहाँ का मालिक हो जाता है। जगह उसे क्या व्यापेगी वह जगह को व्याप जाता है।" कहते हुए श्रीमती राय ने एक सरल उदाहरण दिया कि वह फिल्टर का पानी पीकर भी पेट पकड़े रहते हैं जबकि लोग म्युनिसिपैलिटी का पानी पीकर स्वस्थ हैं। यह बात सच के बहुत करीब थी क्योंकि नासिरी नाले के निवासी भी यह मानते थे कि वह किसी भी और वजह से बीमार पड़ सकते हैं परंतु नासिरी नाले के कारण नहीं। वह इतना तो जानते ही थे कि नासिरी नाला, नासिरी नहर का बिगड़ा हुआ नाम है।

तमाम ऐसे लोग थे जो इससे बेहतर जानते थे क्योंकि वह शहर का इतिहास जानते थे। इस शहर का इतिहास पाठकों की कल्पना शक्ति को सँवारने वाले ललित लेख जैसा था। इसमें कोई कमी न रह जाए इसलिए शहर के अधिकांश गद्यकार इतिहासकार थे। उन्हें इस शहर के नाम से प्रेम था। यह नाम ऐसा था कि हिज्जेबाज लेखकों के एक गुट ने इसका संबंध एक पौराणिक पुरुष से जोड़ा था तो दूसरे गुट ने दलित वर्ग के किसी वीर से। परंतु इस नामकरण अनुसंधान के वावजूद शहर में जो दिखाने योग्य (बचा) था वह नवाबों के समय का ही था। जो नहीं (बचा) था उसका इतिहास अभी भी बन रहा था।

शहर के नवाबों का यह ख्याल था कि वे स्त्रियों और ईश्वर के प्रेम के परमपात्र हैं। इसी प्रेमवश उन्होंने बहुत सी इमारतें बनवाई। परंतु एक थे नासिर नवाब जिन्होंने शहर के बीचोबीच एक नहर खींचनी चाही। किसी तकनीकी गलती के कारण यह नहर अधूरी रह गई और नाले का काम करने लगी। नासिरी नहर या नाला दोनों नाम एक जैसे जुबान पर चढे थे। नाले के किनारे एक लंबी-सी मलिन बस्ती बसी थी जो दूर से कूड़े की एक कतार जैसी दिखाई पड़ती थी क्योंकि यहाँ रहने वालों ने अपने घर ईंट-गारा नहीं, कूड़ा-करकट जोड़कर बनाए थे।

न तो सुषमा प्रजापति और न ही वह लड़का जानता था कि नासिरी नाला नगर की सांस्कृतिक धरोहर है।

कुछ दिनों बाद राय साहब धूप में बैठकर अपनी कमजोरी सेंक रह थे तब वह फिर आता हुआ दिखाई दिया। उसके गले में झोला लटका हुआ था। वह पास आकर बेधड़क मुसकुराने लगा, जैसे कोई स्थिति स्पष्ट कर रहा हो। उसी तरह से राय साहब ने कहा कि आज कुछ नहीं लेना है और अगले कदम का इंतजार करने लगे। पहली मुलाकात में ही लड़का उन्हें चकित कर गया। वह उनके सामने एक भिक्षुक की तरह आया और एक व्यवयायी की तरह गया। इस नन्हें-मुन्ने सेल्समैन ने उनके दिमागी खानों की लकीरें धुँधली कर दी थीं। यह कौन-सी बैरायटी है, उन्होंने सोचा।

लड़के ने झोले में हाथ डाला और माचिस की डिबिया निकालकर बोला, "पता कर लीजिए। जरूरत होगी।"

तभी श्रीमती राय ने बाहर झाँका तो लड़का बिलकुल आश्वस्त हो गया। उसने माचिस की डिबिया सफलतापूर्वक बेच दी। जब वह जाने को हुआ तब राय साहब ने पूछा, "तुम उस दिन नाड़ा तो नहीं बेच रहे थे।"

"कब**?**" उसने याद दिलाने के लिए कहा।

"अरे दस-पंद्रह दिन पहले।"

"नहीं तो**!** क्या आपको चाहिए**?**"

"नहीं।" राय साहब ने सख्ती से कहा।

लड़का चला गया। लेकिन इस घर में अपना रास्ता खोल गया। वह छोटे-मोटे सामान लाता था और किसी रहस्यमयता के तहत घर में उन सामानों की आवश्यकता प्रकट हो जाती थी। राय दंपत्ति उससे बातें करने लगे थे। जब कभी वह आता तो छोटा-मोटा बेचने के अलावा छोटा-मोटा काम भी कर जाता।

एक दिन उसका और सुषमा प्रजापति का आमना-सामना हो गया। उसे देखते ही वह चीखी, "अरे तैं यहाँ क्या कर रहा है?"

लड़के ने कोई उत्तर नहीं दिया तो श्रीमती राय ने उसकी उपस्थिति का कारण स्पष्ट किया। इस पर सुषमा प्रजापति ने जोर देकर पूछा, "कहीं से चोरी-ओरी करके तो नहीं लाता?"

लड़के ने एक शब्द का ना कहा जैसे यह प्रश्न और उत्तर सहज रूप से अपेक्षित हो।

श्रीमती राय को यह सवाल कुछ अच्छा नहीं लगा। कैसे कोई सोच सकता है कि वह चोरी का सामन खरीदेंगी। रत्ती भर मलाल को भली भाँति ठंडा करके उन्होंने पूछा, "तुम अपना खोया कब ले जाओगी?" कब तक यहाँ रखा रहेगा।"

"आज ले जाऊँगी।"

वह कभी कभार इस घर के फ्रिज का उपयोग कर लेती थी। श्रीमती राय जब पहली बार नहीं मना कर पाई तो बाद में मना करना और मुश्किल हो गया। अच्छा सेवक अच्छे सेवायोजक को दो-चार कदम पीछे हटा ही देता है। उसे कहीं से खोया मिल गया था उस दिन उसका व्यंजन बनाने का सुभीता न होने के कारण उसने यहीं रखवा दिया था।

खोया निकाल कर ले जाते समय वह एक पल के लिए ठिठकी, जरा-सा टुकड़ा लड़के के अपेक्षाविहीन आपत्तिहीन मुख में डाला और चप्पल फटकारती हुई बाहर चली गई।

बाद में पता चला कि लड़का नासिरी नाले में ही कहीं रहता है। कहीं कहकर सुषमा प्रजापति ने यह स्पष्ट कर दिया कि लड़के से उसे कोई मतलब नहीं है। वस्तुतः उसे जो भी जानकारी थी वह गैर जानकारी की श्रेणी में आती थी। लड़का माँ और दो बहनों के साथ रहता था। कोई रिक्शे वाला इनका बाप है जो अपने रिक्शे के साथ जहाँ पाता है वहीं रह लेता है। अजीब मनमौजी आदमी है जो कभी-कभार अपना परिवार भुगतने आता है और उस दिन जन बच्चा समेत वह सबको रिक्शे से घुमाता है। लड़के की माँ

और बहनें कूड़े में से काम बीनती हैं। यह किनारे के भी छोर पर रहने वाले लोग हैं जिनकी जाति का भी कोई अता-पता नहीं।

डॉ. रम्मन को खाने पर बुलाना ओवरड्यू हो चुका था। डॉक्टर परिवार इन आमंत्रणों को वाचाल उत्साह के साथ निभाता था। सूप से लेकर डेजर्ट तक हर आइटम तारीफ कर-कर के खाया जाता है। खाने से पहले की बातचीत के बीच डॉक्टर दंपत्ति राय दंपत्ति की स्वास्थ्य परीक्षा पूछताछ और उँगलियों से करते हैं। मतलब, कोई आला-वाला नहीं लगता है। इस शिष्टाचारमय स्वास्थ्य परीक्षण के बाद वह मामूली शिकायतों के छोटे-मोटे उपचार बताते और हमेशा टहलने पर जोर देते। आज भी जब उन्होंने वही किया तो राय साहब ने शिकायत की कि उनका भ्रमण मार्ग अब ट्रैफिक, धुएँ और शोर से भर गया है। यूँ इसका कारण राय साहब भी जानते थे, बल्कि शहर का हर समाचार-पत्र पाठक जानता था। उच्च-न्यायालय ने एक और लैंडमार्क निर्णय दिया था। डॉ. साहब ने समझदारी के साथ मुँह खोला।

शहर का हृदय धुएँ और गंदगी से भर रहा है। अगर उसे सुचारु रूप से इधर-उधर वितरित नहीं किया गया तो शहर का दम घुट जाएगा। उसकी संस्कृति नष्ट हो जाएगी। फिर बड़े कष्ट के साथ डॉक्टर रम्मन ने आगामी शब्द का उच्चारण किया। 'तहजीब-ओ-तम्द्दुन'। उच्च-न्यायालय में जनहित याचिका दायर करने वाले जनहितैशी ने इस शब्द को अँग्रेजी के बडे अक्षरों में लिखा था।

पर्यावरण, प्रदूषण, संस्कृति और इतिहास से मिली-जुली इस याचिका में प्रकट चिंता के परिणामस्वरूप न्यायालय ने शहर के एक क्षेत्र को हेरीटेज जोन घोषित किया। इस हेरिटेज जोन में महल, मकबरे और उद्यानों के अलावा नासिरी नहर भी थी और आदेश यह थे कि इन सबको अतिक्रमण और प्रदूषण से मुक्त किया जाए। इस अच्छी सी चिंता के विरुद्ध सुषमा प्रजापति और नासिरी नाले के अन्य निवासीगण बहुत चिंतित थे।

सुषमा प्रजापति ने श्रीमती राय से एडवांस माँगा। देना ही पडेगा, यह जानते हुए भी गृहस्वामिनियाँ थोड़ा झिकझिक करती हैं, जिससे क्षुब्ध होकर माँगने वाला कार्य-कारण सब बताता है। पता चला कि नासिरी नाले के किनारे की बस्ती उजड़ने ही

वाली है। यह बस्ती शुरू से अनियमित और अवैध थी। किसी समय इस बस्ती की सेवा करने के लिए आपाधापी मची थी। सबसे पहले नेता लोग जिन्हें यहाँ के वोट चाहिए, उन्होंने बस्ती में पानी की लाइन खिंचवाई हालाँकि नगर निगम के अधिकारी प्रतिवाद करते रहे कि यह अनियमित बस्ती है। उसके बाद एन.जी.ओ. गण ने बस्ती के जीवन सुधार के लिए प्रोजेक्ट बनाए और हर तरह की सरकार से ग्रांट कमाई। इन सभी के साथ सजी-बजी थीं भूतपूर्व किशोरियों जैसी कुछ प्रौढ़ समाज-सेविकाएँ। नगर के न्यायिक प्रतिष्ठानों का हृदय भी इन पर पसीजता ही रहता था। लेकिन अब सारी निगाहें बदल रही थीं, केवल कुछ राजनीति शेष थी। एक राजनीतिक दल के कार्यकर्ता ने जो इस बस्ती पर फौजदारी नियंत्रण रखता था मामले को आगे लड़ने के लिए चंदा उगाहा था और उसे एडवांस चाहिए ही चाहिए।

सुषमा महरिन की बोलचाल दिनों दिन गिर रही थी। कभी कुछ टोके जाने पर कहती, "जितने दिन और जैसा सुषमा से हो सके कराय लेव, आगे भगवान मालिक।"

"क्यों, कहाँ जा रही हो?"

"जहाँ ठौर मिले। सुषमा कहाँ जाएगी, क्या बतावे।"

"आखिर कुछ तो सोचा होगा?"

"दिमाग को भी तो एक ठौर चाहिए, सोचने के लिए।"

उसने ठिठककर कहा।

महरिन बिन जीवन की चिंता श्रीमती एवं श्री राय को होने लगी। राय साहब को अगरबत्ती वाले लड़के का भी ख्याल आया जिससे इस बीच वह काफी घुल-मिल गए थे।

हुआ यह कि ज्वर होने के उपरांत राय साहब की पिंडलियाँ बहुत मसमसाती थीं। उनका मन होता कि कोई दबाए। कसमसाते हिचकिचाते उन्होंने कहा कि अगर लड़का उनके पैर दबा दे तो वह कुछ पैसे दे देंगे। तब से जब भी वह आता, वह पैर दबवाते। लड़के के मुलायम हाथों से यद्यपि उन्हें पूरी तसल्ली नहीं होती थी तब भी

बेचैनी से चैन तक की आभास लीला वह पूरी निष्टा के साथ महसूस कराते। जहाँ जरूरत होती, रोक टोक कर वह उसके अनभ्यस्त हाथों को सही रास्ते पर लगाते।

लड़का अब यूँ भी आने-जाने लगा था, बिना किसी माचिस मोमबत्ती के। वह इस घर का लोभी हो गया था। श्रीमती राय उसे बचा-खुचा कुछ न कुछ खाने को देती रहती थीं। वह एक अनुशासनहीन खवैय्या था जो कभी भी कुछ भी खा सकता था। अगर उससे पूछा जाता तो शायद ही वह इस अनुशासनहीनता का स्पष्टीकरण दे पाता क्योंकि खुद उसके घर का खानपान बहुत अनुशासित था। उसके यहाँ खाना सबको बाँटकर दिया जाता था। न माँ अपने बच्चों से पूछती कि कुछ और चाहिए और न बच्चे अपनी माँ से कुछ और माँगते। राय साहब को उसकी भूख से हैरानी नहीं थी लेकिन अपनी भूख कम होने की परेशानी जरूर थी। उनका भ्रमण मार्ग दिनोंदिन प्रदूषण कीर्ण हो रहा था। तब उनके बालचर ने उन्हें सही रास्ते पर लगाया।

वह रास्ता अँग्रेजों के कब्रिस्तान तक भटकता हुआ जाता था। यह अँग्रेज सन 1857 की उस लड़ाई में मरे थे जो नासिर नवाब के वंशजों से हुई थी। कब्रें छोटी और मजबूत थीं और आपस में इतनी नजदीक थीं मानों एक-दूसरे का मुँह देखे बगैर चैन नहीं। इनमें कुछ बच्चों की कब्रें थीं जो बीमारी से मरे थे। जन्म और मृत्यु की तस्दीक करती इन छोटी-छोटी घरौंदे जैसे इमारतों में एक घरौंदा छह महीने के बच्चे का था। यह जगह शहर के पर्यटक नक्शे में थी।

कब्रों से कुछ दूर कब्रिस्तान परिसर में ही इतिहास के अभिलेखागार में सुरक्षित कुछ फूटी-बिखरी इमारतें और उनके बीच जड़ जमाए शतजीवी वृक्षों की मनोरम कतारें और गुच्छों की ओर तन, मन की तरह लपकता था। एक दिन टप से कोई गुठली जैसी चीज गिरी जिसे देखकर राय साहब की स्मृति में मृदु आघात हुआ। अरे! कौड़िल्ला। उनके बचपने में कौड़िल्ला खेला जाता था। उन्होंने लड़के को हथेली पर रखकर कौड़िल्ला दिखाया। लड़के ने उसे उठाकर एक दूसरे पेड़ पर तान कर फेंका। असल में उसकी दिलचस्पी उन्हीं पेड़ों में थी जिनसे कुछ खाने योग्य झरता था। वह विलायती इमली और चिलबिल के पेड़ों की ओर ताकता और ढेला चलाता।

एक दिन वह राय दंपत्ति को बहुत दूर घुमाने ले गया। एक ऊँची जगह से दूसरी नीची जगह की झलक मिल रही थी। लड़के ने उस तरफ उँगली तानी। यह उसकी बस्ती थी, नासिरी नाले की मुंडेरों से झाँकती हुई सी, अब गिरी कि तब गिरी सी, किंतु उसी उँगली की नोक पर थमी हुई सी।

वहाँ तक जाने के लिए एक लंबा मटमैला ढलवाँ रास्ता था। लड़का उस रास्ते पर आगे बढ़ा जैसे फिसल रहा हो या रास्ते से खेल रहा हो। उसने पीछे मुड़कर देखा। राय दंपत्ति अपनी जगह से हिले भी नहीं। लड़के ने किसी जाते हुए मुसाफिर की तरह हाथ हिलाया। राय साहब ने पावती में हाथ उठाया। यह उनकी आखिरी मुलाकात थी क्योंकि भविष्य एक झटके के साथ बदलने वाला था।

आने वाले दिनों में यह तय हो गया कि नासिरी नाले को फिर से नहर होना है। अखबारों में इसके लिए संकल्पात्मक संपादकीय छप रहे थे सार्वजनिक चिंता से भरे-पूरे दिखने वाले भद्रगण श्रमदान करने के लिए तत्पर थे। तमाम जंग लगी संस्थाएँ इसी नाले में अपनी जंग छुड़ा रही थीं। यूनिवर्सिटी से एन.एस.एस. के छात्र आए। हँड़िया से वर्दी निकालकर भारत स्काउट एवं गाइड के स्वयं सेवक आए। अखबारों के इंटरनेट पोल में इस अभियान के बारे में हाँ और ना में सवाल पूछे गए। नब्बे प्रतिशत हाँ के आए जिनसे अखबारों के संपादकीय सुर में सुर मिलता था।

राय साहब ने अखबार पलटा तो कुछ ऐसे चेहरे झलके जिन पर वह उँगली रख सकते थे। सर्वप्रथम चेहरा उस जींस वाली सुहागिन का था जो सरे बाजार नाड़ा खरीदने से बच गई थी। पता चला कि वह एक एन.जी.ओ. की महासचिव थी। नासिरी नहर के पुनरूत्थान में उसकी और उसके एन.जी.ओ. की भूमिका की प्रशंसा की गई थी। वह इस भूमिका में बहुत जंच भी रही थी, क्योंकि उसकी ससुराल में एन.जी.ओ. का व्यवसाय काफी दिनों से चल रहा था। जब मलिन बस्तियों के हक-हकूक के लिए लड़ाई लड़ने का युग था तब उसके ससुर इसी बस्ती के लिए दो-तीन प्रोजेक्ट चला चुके थे। स्पष्टतया अब उसकी ससुराल नई आर्थिक नीति पर चल रही थी। उच्च-न्यायालय में जनहितैषी याचिका इसी एन.जी.ओ. द्वारा दायर की गई थी।

नासिरी नाले वाले अकेले पड़ते जा रहे थे और उनमें बहुत-सी कमियाँ पैदा हो गई थीं। उन पर चोरी-छिछोरी के सामान्य आरोप तो लगते ही थे, इस बार यह अतिरिक्त रूप से कहा गया कि वह प्लास्टिक और पालीथीन का कचरा बीनकर प्रदूषण के एक अनश्वर चक्र का निर्माण करते हैं। यह आरोप बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुआ जिससे घबराकर राजनीतिक दलों को अपनी राजनीति तय करनी पड़ी। इस प्रकार यह एक राजनीतिक मुद्दा भी था।

इस बस्ती में वयस्क मताधिकारियों की संख्या बहुत अधिक थी। लगता था कि बस्ती में कोई नाबालिग है ही नहीं, आबाल वृद्ध सभी मताधिकारी थे। उसमें सभी दलों के मतदाता थे। इसलिए जब अनुप्रास अलंकार से प्रेम करने वाली एक पार्टी ने प्लास्टिक, पालीथीन, पर्यावरण और प्रदूषण मिलाकर एक नारा बनाया तो उसके क्षेत्रीय विधायक ने आतंरिक लोकतंत्र के अनुशासन के अंतर्गत आपत्ति की कि बेहतर नारा तो यह है कि 'प्लास्टिक लगाओ, पेड़ बचाओ।' अन्य दलों के सामने ऐसी कोई भाषा समस्या नहीं थी। इसलिए वह भाषा निरपेक्ष रीति से इस समस्या का समाधान खोज रहे थे।

स्थिति थोड़ी उलझी हुई थी और थोड़ी गर्म थी। सुषमा प्रजापति श्रीमती राय को रोज काम छोड़ने की पूर्व सूचना दे रही थी। उसकी सूचना में शब्द धमकी के होते और स्वर आर्तनाद का। उसने यह भी बताया कि जिन नेता को उसने चंदा दिया था वह जुटा हुआ था। उसने वैकल्पिक प्रस्ताव किया था कि यदि हटना ही है तो इन लोगों को अँग्रेजों वाले कब्रिस्तान के पास बसा दिया जाए। इस प्रस्ताव का तुरंत और तीव्र विरोध हुआ चूँकि यह प्रस्ताव इतिहास का मान मर्दन करता था।

आजादी से पहले यह कब्रिस्तान अँग्रेजों के विजयी बलिदान का प्रतीक था तो उसके बाद भारतीयों के पराजित किंतु प्रेरणादायी शौर्य का। इस यशस्कर खंडहर में नई बस्ती बसाने वालों और बस्ती के वोटों की राजनीति करने वालों पर सार्वजनिक धिक्कार पड़ने लगी जिससे व्यथित होकर राजनीतिज्ञ भी यह सोचने लगे कि आओ यारों थोड़ा सा अराजनीतिक हो जाएँ। इसी सोच से वह फल मिला जिसके लिए सभी जुटे हुए थे। चंदे वाले नायक ने हारकार यह माँग रखी कि कहीं भी कैसी भी जगह मिल जाए।

सुषमा प्रजापति की नोटिसों से दुखी राय दंपत्ति ने डॉ. रम्मन से पूछा कि आखिर होगा क्या। राय साहब ने बस्ती वालों की माँग से सहानुभूति प्रकट की तो डॉ. रम्मन ने भली-भाँति आपत्ति की। भला यह भी कोई बात हुई कि पहले तो अवैध कब्जा करो फिर उसके बदले जमीन लो। जिसे इतना ही दर्द है वह अपनी जमीन क्यों नहीं देता? दूसरे के दम पर सभी दानवीर कर्ण बने फिरते हैं और सरकारी जमीन को तो लोगों ने द्रोपदी समझ रखा है। यूँ भी यह लोग कहीं भी चले जाएँगे। डॉ. रम्मन यह बताना भूल गए कि इनमें से बहुतों के पास लौटने के लिए कोई जगह नहीं है क्योंकि यह लोग कोई गाँव-देहात छोड़कर नहीं आए थे। यह लोग इसी शहर के पीढ़ी दर पीढ़ी लोग थे, इस कोने से उस कोने भागते हुए शहर के पुराने प्रजाजन के बहुवंशज। डॉ. रम्मन अपनी धुन में थे और जैसे मुर्गी का पर नोच रहे हों, उसी धुन में संदर्भ से नोचकर उन्होंने एक विख्यात कथन उद्धृत किया, "मनुष्य जाति केवल वही समस्याएँ प्रस्तुत करती है, जिनका समाधान वह कर सकती है।"

कहीं भी कैसी भी जगह की लाचार माँग इतनी विध्नबाधाहारी सिद्ध होगी, किसी को पता नहीं था। अचानक यह सामने आया कि अगर उन्हें शहर से कहीं दूर बसा दिया जाता है तो वह उस चुनाव क्षेत्र से बाहर हो जाएँगे जहाँ उनका वोट काम आता है। वोटर लिस्ट से बाहर होते ही स्थानीय राजनीति हल हो जाएगी। अरे यह तो स्ट्रोक आफ जीनियस है।

बस्ती में उस दिन कोई बड़ा दृश्य उपस्थित नहीं हुआ। लोगों ने अपनी छोटी-छोटी गृहस्थियाँ समेट ली थीं। शहर से बीस किलोमीटर दूर एक ऊसर में उन्हें जगह दी गई थी। उनके लिए ट्रकें लगवा दी गई थीं। कुछ लोगों ने मुर्गे और बकरियाँ पाल रखी थीं। समेटते समय वह बच्चों की तरह शोर कर रहे थे। बच्चे शोर नहीं कर रहे थे, क्योंकि वह उजड़ने में बड़ों की मदद कर रहे थे। लोग खुद ही ट्रक में भर रहे थे, पुलिस को खड़े होने के अलावा और कोई श्रम नहीं करना पड़ा। कुछ ऐसे थे जो ऊसर में नहीं गए। वह शहर में कहीं और गुम होने के लिए पहले ही निकल भागे थे। बस्ती के कुत्तों ने कुछ दूर तक ट्रकों का पीछा किया और फिर हाँफकर लौट गए। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि कहाँ जाएँ।

इस दिन के दो दिन पहले सुषमा प्रजापति आखिरी बार काम और सलाम करने आई थी। जाते समय उसने कहा, "अच्छा आंटी जी, तो अब नमस्ते।" तब श्रीमती राय ने पूछा, "कोई और काम करने वाली तुम्हारी निगाह में है?"

"नहीं जी, कहाँ।" कहकर उसने अपने हाथों को देखा। वह बरतन माँजने के बाद थोड़ा तेल लेकर हाथों को चिकनाती थी। उन्हीं हाथों को उसने फिर से जोड़ा और उस घर की दुनिया से बाहर हो गई।

एक विशाल प्रोजेक्ट बन चुका था जिसके लागू होते ही नासिरी नहर में निर्मल जल बहेगा। उसके किनारे-किनारे नगर के पुराण पुरुष के नाम एक थीम पार्क बनेगा जिसमें प्राचीन महाकाव्यों में वर्णित ताल, तिलक, तमाल, शिंशपा, आमलकी और जंबू नाम के वृझ लगेंगे। राय दंपत्ति के टहलने के लिए भी यह रमणीय स्थल होगा। बाद में अचानक एक जरूरत आ पड़ने पर इस उद्यान की ओर जाने वाले मार्ग का खाता दलित वीर के नाम खोला जाएगा। कुछ लोगों को भय और कुछ लोगों को आशा थी कि नासिरी नहर और पुराण उद्यान के बीच कभी न कभी झगड़ा होगा। चूँकि यह एक सुरक्षित भविष्यवाणी जैसी बात थी इसलिए किसी ने इसे गंभीरतापूर्वक नहीं लिया।

श्रीमती राय का कुछ समय कष्ट में बीता जैसे कि उन्हें आशंका थी। उनकी समस्या का समाधान भी हो गया जैसा कि डॉ. रम्मन ने कहा था। धूपवाली औरत मौसम और रूप बदलकर उनका कष्ट निवारण करने आई थी।

बरसात के दिन थे और पानी कई दिनों से बरस रहा था। उन्होंने सोचा था कि आज दिन में तो पानी थमेगा ही लेकिन उनके भविष्य चिंतन के बावजूद पानी उस दिन भी बरस रहा था। खिझलाकर पति-पत्नी दरवाजे से लगे बरामदे में बैठ गए। तभी उन्होंने एक स्त्री शरीर को झपटते हुए आते देखा जैसे बूँदें नहीं अपशब्द उसे बेध रहे हों। उसने पालीथीन की सस्ती बरसाती सिर और कंधे पर ओढ़ रखी थी। उसे देखते ही श्रीमती राय के मुँह से निकला "अरे धूपवाली।"

औरत यह संबोधन सुन समझ नहीं पाई क्योंकि वह अभी भी बरसात के हल्ले में थी। रंगीन साड़ी ब्लाउज की तरह उसके चेहरे पर पानी भी एक रंग की तरह पुता हुआ था। पल्लू से मुँह पोंछते हुए उसने कहा, "इधर से गुजर रही थी कि इतनी जोर पानी का लहरा अया। अच्छा हुआ कि आपका घर दिख गया।"

"अच्छा किया लेकिन तुम्हारा झोला-झक्कड़ कहाँ है?" श्रीमती राय ने पूछा।

"जी मैंने वह काम छोड़ दिया है घर-घर बोझ लादे कहाँ तक घूमूँ।"

"तो अब क्या करती हो?"

"एजेंसी है हमारी। मतलब, मैं उसमें काम कारती हूँ। हमारे यहाँ घरेलू नौकरों का धंधा होता है। आपके यहाँ तो काम करने वाली है न... जिनके यहाँ नहीं है उनसे पूछिए। हम लोग अच्छे काम और चाल-चलन की गारंटी लेते हैं। कार्ड देखिए, हमारा।"

कार्ड पर डोमेस्टिक हेल्पलाइन के प्रबंध निदेशक के नाम, पते और टेलीफोन नंबर के साथ छपा था डब्लू.डब्लू.डब्लू. डाट डोमहेल्प डाट काम।

"ओह।" श्री राय के मुख से निकला।

"हाँ, हमें जरूरत है।" श्रीमती राय ने कहा।

"बहुत अच्छा।" कहते हुए उसने राय साहब का नाम और टेलीफोन नंबर नोट किया। यह काम करने के बाद वह छोटी-छोटी बातें करने लगीं। जैसे डोमेस्टिक हेल्पलाइन की सेवा और शुल्क। उसका अपना सुपरवाइजरी का दायित्व। जिन घरों में डोमेस्टिक हेल्पलाइन की सेवा लगती थी वहाँ वह हफ्तावार विजिट करती थी कि क्या चल रहा है और कैसे चल रहा है ग्राहक और बालक के बीच। उसने यह बात स्पष्ट कर दी कि उनके यहाँ किसी स्त्री को डोमेस्टिक हेल्प के रूप में नहीं भेजा जाता। उनके यहाँ मेहनती और ईमानदार बालक काम पर लगाए जाते हैं। ग्राहक को सस्ते और अच्छे पड़ें, यही कोशिश रहती है। औरतें केवल सुपरविजन और सेल्स का काम करती हैं।

"ठीक है न, मैडम।" इतना बताकर उसने पूछा।

"ठीक है, लेकिन कब लाओगी?"

"हद से हद तीन दिन।" कहते हुए उसने पानी की ओर देखा जो कम हो कर झीना-झीना हो गया था और इसके साथ ही अचानक उमस काफी बढ़ गई थी। सीली हुई देह की समस्त संधियों से भाप उठने लगी और वातावरण में मानुष गंध फैलने लगी। राय साहब ने नथुने सिकोड़े और कहा, "कहीं फिर से न बरसने लगे।"

'जी, जाती हूँ।"

हल्की-हल्की झींसी में साड़ी सिकोड़े सँभल-सँभलकर वह जा रही थी पर अजीब बात है कि उस पहली बार की ही तरह बह कड़ी धूप में तिरती हुई-सी ही लग रही थी। बेशक मेहनती और ईमानदार थी और शायद किसी के लिए सस्ती और अच्छी भी। राय साहब को डोमेस्टिक हेल्प मिल गई। उसका भी चेहरा गोल और रंग साफ था, किसी खोए हुए बच्चे की पूर्वकथनीय तस्वीर की तरह।